



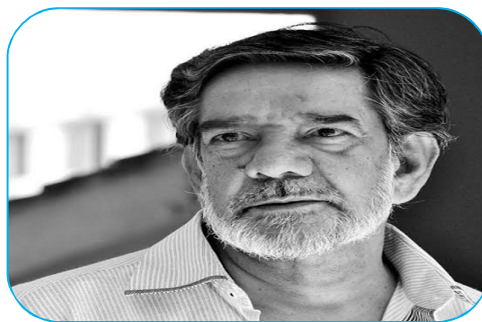
राजेश जोशी की कविताओं में जनमुक्ति के स्वर - एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ. अमरेंद्र कुमार सिंह

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, मदन अहल्या महिला महाविद्यालय, नवगछिया.

सार

राजेश जोशी समकालीन हिंदी कविता के सर्वाधिक चर्चित और जन-पक्षधर कवि हैं। उनकी कविताओं में जनमुक्ति का स्वर किसी नारेबाजी या राजनीतिक घोषणापत्र के रूप में नहीं आता, बल्कि आम आदमी के रोजमर्रा के जीवन, उसकी थकान, उसकी छोटी-छोटी खुशियों और उसके मौन प्रतिरोध के रूप में आता है। प्रस्तुत आलेख में उनकी कविताओं में निहित आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय मुक्ति के स्वरों का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। यह आलेख विकसित भारत 2047 और बेरोजगारी तथा नारी सम्मान के समकालीन विमर्शों से भी इस कविता को जोड़ने का प्रयास है।



प्रस्तावना

हिंदी कविता के इतिहास में सत्तर का दशक एक निर्णायक मोड़ है। इस समय तक अज्ञेय का प्रयोगवाद और नई कविता का व्यक्तिवाद अपनी सीमा पर पहुँच चुका था। ऐसे में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन की जनवादी परम्परा को राजेश जोशी, अरुण कमल, उदय प्रकाश, मंगलेश डबराल जैसे कवियों ने आगे बढ़ाया। राजेश जोशी की कविता इस अर्थ में विशिष्ट है कि वे मुक्ति को किसी दूर के भविष्य में घटित होने वाली क्रांति के रूप में नहीं देखते, बल्कि वर्तमान के छोटे-छोटे प्रतिरोधों में देखते हैं। उनके लिए जनमुक्ति का अर्थ है - एक मजदूर को शाम को चाय पीने की फुर्सत मिलना, एक बच्चे का स्कूल जाना, एक स्त्री का अपने मन से हँसना और रोना। यह मुक्ति बहुत बड़ी नहीं, बहुत मानवीय है।

राजेश जोशी: व्यक्तित्व और कृतित्व

राजेश जोशी का जन्म 18 जुलाई 1946 को मध्य प्रदेश के नरसिंहगढ़ में हुआ। उन्होंने जीव विज्ञान में स्नातकोत्तर किया और लंबे समय तक बैंक में नौकरी की। बैंक की नौकरी ने उन्हें मध्यवर्गीय जीवन के अर्थशास्त्र को बहुत करीब से देखने का अवसर दिया। उनकी कविता में जो क्लर्क, चपरासी, अध्यापक, गृहिणी और बेरोजगार युवक आते हैं, वे कल्पना के पात्र नहीं, बल्कि उनके रोज देखे हुए लोग हैं।

उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं - एक दिन बोलेंगे पेड़ (1980), मिट्टी का चेहरा (1983), नेपथ्य में हँसी (1994), दो पंक्तियों के बीच (2000) जिसके लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला, चाँद की वर्तनी (2006), और समरगाथा जैसी लंबी कविता। उनकी कविता की भाषा में मालवी बोली की मिठास, निमाड़ी की सरलता और नागरी पत्रकारिता की धार तीनों का संगम है। उन्होंने हिंदी कविता को संस्कृतनिष्ठ जटिलता और अंग्रेजी के अनावश्यक प्रभाव से मुक्त किया।

जनमुक्ति की अवधारणा

जनमुक्ति शब्द को अक्सर केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित कर दिया जाता है, पर राजेश जोशी के संदर्भ में यह शब्द बहुत व्यापक है। उनके यहाँ जनमुक्ति के कम से कम चार स्तर हैं। पहला स्तर है आर्थिक मुक्ति, यानी पूँजी, बाजार और श्रम के शोषण से मुक्ति। दूसरा स्तर है सामाजिक मुक्ति, यानी जाति, धर्म, पितृसत्ता और सामंती मूल्यों से मुक्ति। तीसरा स्तर है सांस्कृतिक मुक्ति, यानी मीडिया, बाजार और उपभोक्तावाद के मायाजाल से मुक्ति। और चौथा स्तर है पर्यावरणीय मुक्ति, यानी विनाशकारी विकास मॉडल से प्रकृति और आदिवासी की मुक्ति। राजेश जोशी की कविताएँ इन चारों स्तरों पर एक साथ संघर्ष करती हैं।

कविताओं में जनमुक्ति के विविध स्वर

1. बाल-श्रम और भविष्य की मुक्ति का प्रश्न

राजेश जोशी की सबसे चर्चित कविता बच्चे काम पर जा रहे हैं, न केवल उनकी बल्कि समकालीन हिंदी कविता की सबसे महत्वपूर्ण कविताओं में से एक है। यह कविता भारत की नई शिक्षा नीति और बेरोजगारी के विमर्श से सीधे जुड़ती है।

"कोहरे से ढकी सड़क पर बच्चे काम पर जा रहे हैं
सुबह सुबह बच्चे काम पर जा रहे हैं
हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति है यह"[1]

कवि यहाँ एक दृश्य दिखाता है - कोहरे से ढकी सड़क, सुबह का समय, और बच्चे काम पर जा रहे हैं। सामान्यतः सुबह बच्चे स्कूल जाते हैं, पर यहाँ वे काम पर जा रहे हैं। यह दृश्य ही व्यवस्था की विफलता का प्रतीक है। कवि इसे हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति कहता है। भयानक इसलिए नहीं कि बच्चे काम कर रहे हैं, बल्कि इसलिए कि हम इसे देखकर भी सामान्य मान चुके हैं। जनमुक्ति की पहली शर्त है कि यह पंक्ति भयानक लगे। जब तक हमें यह पंक्ति सामान्य लगेगी, तब तक मुक्ति संभव नहीं। यह कविता हमें बताती है कि विकसित भारत का पहला लक्ष्य हर बच्चे को काम से मुक्त कर स्कूल भेजना होना चाहिए।

इसी भाव को आगे बढ़ाते हुए वे एक अन्य कविता में लिखते हैं :

"बच्चे जब खेल नहीं पाते
तो बड़ा होना भूल जाते हैं

और जब बड़ा होना भूल जाते हैं
तो देश बूढ़ा होने लगता है"[2]

यहाँ खेल से मुक्ति का अर्थ है बचपन की मुक्ति। जिस देश में बचपन काम पर चला जाए, वह देश कभी विकसित नहीं हो सकता।

2. बाजारवाद और पूँजी के विरुद्ध प्रतिरोध

1991 के बाद भारत में उदारीकरण और वैश्वीकरण का दौर शुरू हुआ। राजेश जोशी ने इस दौर को बहुत बारीकी से देखा। उनकी कविताओं में बाजार एक अमूर्त अवधारणा नहीं, बल्कि एक जीवित खलनायक है।

"बाजार में एक बहुत बड़ी चिड़िया
सबकी जेबें टटोल रही है"[3]

यह चिड़िया कोई सामान्य चिड़िया नहीं, बल्कि कॉर्पोरेट पूँजी का प्रतीक है। वह जेब टटोल रही है, यानी हमारी क्रय-शक्ति ही नहीं, हमारी नागरिकता भी छीन रही है। आज डिजिटल युग में यह चिड़िया हमारे मोबाइल फोन में घुस गई है।

एक अन्य महत्वपूर्ण कविता कपड़े में वे वर्ग-भेद को बहुत मार्मिक ढंग से दिखाते हैं :

"कपड़े अब आदमी को नहीं पहनते
आदमी कपड़ों को पहनता है
कपड़े तय करते हैं
आदमी की औकात"[4]

यहाँ कपड़ा केवल वस्त्र नहीं, बल्कि सामाजिक हैसियत का प्रतीक बन गया है। गरीब के लिए कपड़ा अब भी तन ढकने का साधन है, जबकि अमीर के लिए वह अपनी श्रेष्ठता दिखाने का साधन है। यह वही बेरोजगारी और असमानता का प्रश्न है जो आज विकसित भारत के सामने सबसे बड़ी चुनौती है।

बाजार पर ही उनकी एक और कविता है :

"बाजार ने हमें
जरूरत से ज्यादा दे दिया है
और जरूरत की चीजें
हमसे छीन ली हैं"[5]

यह पंक्ति आज के ऑनलाइन शॉपिंग और ईएमआई कल्चर पर सटीक टिप्पणी है। हमारे पास पचास जोड़ी जूते हैं, पर पैरों में छाले हैं। यही सांस्कृतिक गुलामी है, जिससे मुक्ति जरूरी है।

3. स्त्री-मुक्ति और नारी सम्मान का स्वर

राजेश जोशी की कविताओं में स्त्री-मुक्ति का स्वर बहुत मुखर नहीं, बहुत सूक्ष्म है। वे स्त्री को देवी बनाकर पूजा करने के पक्ष में नहीं हैं। वे उसे एक सामान्य मनुष्य के रूप में देखते हैं जिसे हँसने, रोने, थकने और सपने देखने का अधिकार है। यही सच्चा नारी सम्मान है।

"वह थोड़ी सी जमीन चाहती है
थोड़ा सा आसमान और थोड़ी सी हवा
जहाँ वह अपने मन से हँस सके, रो सके"[6]

यह थोड़ी सी जमीन केवल संपत्ति का अधिकार नहीं है। यह अपना स्पेस है, अपना कमरा है। यह वर्जीनिया वूल्फ के एरूम ऑफ वन ओन की भारतीय व्याख्या है। आज जब हम नारी शक्ति वंदन अधिनियम की बात करते हैं, तो यह कविता याद दिलाती है कि कानून से पहले स्त्री को अपनी भावनाओं पर अधिकार चाहिए।

रसोईघर में स्त्री कविता में वे पितृसत्ता के आर्थिक आधार पर चोट करते हैं :

"रसोईघर में वह सबसे पहले आती है
और सबसे बाद में जाती है
फिर भी रसोईघर उसका नहीं है"[7]

श्रम उसका, पर स्वामित्व किसी और का। यह पूरे भारतीय परिवार का सच है। इसी तरह घर में अकेली स्त्री कविता में वे लिखते हैं :

"घर भर में वह घूमती है
जैसे कोई चिड़िया
अपने ही पिंजरे में घूमती है"[8]

यह पिंजरा अदृश्य है, पर बहुत मजबूत है। जनमुक्ति का अर्थ इस पिंजरे से मुक्ति भी है।

4. आम आदमी की गरिमा और बेरोजगारी का प्रश्न

बेरोजगारी केवल नौकरी न होने का नाम नहीं है, बल्कि गरिमा के हनन का नाम भी है। राजेश जोशी इस गरिमा के कवि हैं। उनकी प्रसिद्ध कविता आदमी जनमुक्ति का घोषणापत्र है।

"आदमी को तोड़ने की कोशिशें
लगातार जारी हैं
पर आदमी है कि जुड़ता ही जा रहा है"[9]

सत्ता, धर्म, जाति, बाजार सभी आदमी को तोड़ने की कोशिश करते हैं। उसे हिन्दू-मुसलमान में, सवर्ण-दलित में, अमीर-गरीब में तोड़ते हैं। पर आदमी का जुड़ते जाना, संगठित होना ही उसकी मुक्ति है। यह कविता निराशा में आशा की कविता है।

बेरोजगार युवक पर उनकी कविता मार्मिक है :

"उसके पास एक डिग्री है
और डिग्री के पास
कोई काम नहीं है
दोनों एक दूसरे को देखते हैं
और शर्मिदा होते हैं"[10]

यह शर्मिंदगी ही आज के युवा की सबसे बड़ी पीड़ा है। डिग्री का होना और काम का न होना, यही वह बेरोजगारी है जो सम्मान छीन लेती है। विकसित भारत का अर्थ केवल रोजगार देना नहीं, बल्कि डिग्री को सम्मान देना भी है।

एक अन्य कविता में वे लिखते हैं :

"रोज थोड़ा थोड़ा मरता है आदमी
और रोज थोड़ा थोड़ा जीने की कोशिश करता है"[11]

यह रोजमर्रा का संघर्ष ही जनमुक्ति का असली मैदान है।

5. पर्यावरणीय मुक्ति और आदिवासी चेतना

एक दिन बोलेंगे पेड़ शीर्षक ही अपने आप में जनमुक्ति का प्रतीक है। जब सत्ता मनुष्य की आवाज बंद कर देगी, तब प्रकृति बोलेंगी।

"जब आदमी चुप करा दिए जाएँगे
तब पेड़ बोलेंगे
नदियाँ बोलेंगी
पहाड़ बोलेंगे"[12]

यह पंक्ति पर्यावरणीय न्याय और आदिवासी विस्थापन के विरुद्ध एक सशक्त टिप्पणी है। आज जब विकास के नाम पर जंगल काटे जा रहे हैं, आदिवासियों को विस्थापित किया जा रहा है, तब यह कविता हमें याद दिलाती है कि विकास का अर्थ केवल कंक्रीट के जंगल नहीं है। जोशी के यहाँ पेड़, नदी, पहाड़ केवल बिम्ब नहीं, बल्कि शोषित जनता के सहचर हैं। समरगाथा जैसी लंबी कविता में वे युद्ध और विकास दोनों के विनाशकारी रूप को दिखाते हैं।

6. भाषा की मुक्ति और डिजिटल युग

राजेश जोशी ने कविता की भाषा को भी मुक्त किया। उन्होंने उसे संस्कृतनिष्ठ भारी-भरकम शब्दों और अंग्रेजी के अनावश्यक प्रभाव से मुक्त किया। उनकी भाषा में मालवी की मिठास, अखबार की सपाटबयानी और बोलचाल की लय है। वे मानते थे कि कविता को रोटी की तरह सरल होना चाहिए। आज जब हम हिंदी की बिंदी से डिजिटल तक की बात करते हैं, तो जोशी की भाषा हमें बताती है कि डिजिटल होने का अर्थ अंग्रेजी का गुलाम होना नहीं, बल्कि अपनी भाषा को तकनीक से जोड़ना है।

"शब्दों को भी
थोड़ी देर आराम करने दो
बहुत थक गए हैं वे
नारे लगाते लगाते"[13]

यहाँ शब्दों की मुक्ति की बात है। नारे लगाते-लगाते थके हुए शब्दों को भी आराम चाहिए। यही भाषा की जनमुक्ति है।

निष्कर्ष

राजेश जोशी की कविताओं में जनमुक्ति का स्वर किसी क्रांति के उद्घोष जैसा नहीं, बल्कि एक थके हुए मजदूर की शाम की चाय, एक बच्चे के बस्ते और एक स्त्री की मुस्कान में बसता है। उनका जनमुक्ति बोध हमें बताता है कि विकसित भारत का अर्थ केवल 5 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था नहीं, बल्कि यह है कि कोई बच्चा काम पर न जाए, कोई स्त्री हँसने के लिए इजाजत न माँगे, कोई युवा अपनी डिग्री पर शर्मिंदा न हो और कोई आदमी अपनी गरिमा से वंचित न हो।

डिजिटल युग में जब मनुष्य को डेटा, उपभोक्ता और वोट बैंक में बदला जा रहा है, तब राजेश जोशी की कविता उसे फिर से मनुष्य बनाती है। बेरोजगारी और नारी सम्मान जैसे विषयों पर जब हम सेमिनार करते हैं, तो जोशी की कविताएँ हमें याद दिलाती हैं कि समाधान केवल सरकारी योजनाओं में नहीं, बल्कि मनुष्य की गरिमा की पुनर्स्थापना में है। यही सच्ची जनमुक्ति है और यही राजेश जोशी की कविता की प्रासंगिकता है।

संदर्भ सूची -

- 1.जोशी, राजेश. एक दिन बोलेंगे पेड़. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1980, पृ. 42.
- 2.जोशी, राजेश. मिट्टी का चेहरा. संभावना प्रकाशन, भोपाल, 1983, पृ. 27.
- 3.वही, पृ. 18.
- 4.जोशी, राजेश. नेपथ्य में हँसी. राजकमल प्रकाशन, 1994, पृ. 33.
- 5.जोशी, राजेश. दो पंक्तियों के बीच. राजकमल प्रकाशन, 2000, पृ. 58.
- 6.जोशी, राजेश. नेपथ्य में हँसी. पृ. 55.
- 7.जोशी, राजेश. दो पंक्तियों के बीच. पृ. 49.
- 8.जोशी, राजेश. चाँद की वर्तनी. राजकमल प्रकाशन, 2006, पृ. 62.
- 9.जोशी, राजेश. दो पंक्तियों के बीच. पृ. 71.
- 10.जोशी, राजेश. मिट्टी का चेहरा. पृ. 41.
- 11.जोशी, राजेश. दो पंक्तियों के बीच. पृ. 68.
- 12.जोशी, राजेश. एक दिन बोलेंगे पेड़. पृ. 11.
- 13.जोशी, राजेश. चाँद की वर्तनी. पृ. 19

सहायक ग्रंथ

1. सिंह, नामवर. कविता के नए प्रतिमान. राजकमल प्रकाशन.
2. खरे, विष्णु. आलोचना के बहाने. वाणी प्रकाशन.
3. तिवारी, विश्वनाथ प्रसाद. समकालीन हिंदी कविता. वाणी प्रकाशन.
4. पांडेय, मैनेजर. आलोचना की सामाजिकता. वाणी प्रकाश